

For Private and Personal Use Only

**शु**द्धशुद्धिपत्र

पृष्ठ पंक्ति अशुद्धि

<b>म</b> स्त	गवन	ना ७ ९ उपदेेेेेेे को	उपदेेेेेेेेे उपदेेेे के,
ग्रन्थ	र २	१० ज्योात	ज्योति
२	११	मे तु समुछसति	ये तु समुछसंति
			पृथग्लक्षणा-
ર	१६	ये मेरे भिन्न लत्त्ण	ये जो भिन्न लच्चण
		वाले नाना भाव	वाछे नाना प्रकार के
			भाव
२	१७-	-१८ मेरे भाव परद्रव्य	य हैं परद्रव्य हैं।
સ	٢	कहा है ।	कहा है−
સ	११	मप्पणे परिगहं तु	मप्पणे णो परिगहंतु
8		छिज्जदु	छिज्जदु वा
Ę	٢	ऐसा मरण	ऐसे मरण
ક્	ዓ	मातास्तन	मातास्तन्य
६	१३	मात्र भी त्रपेत्ता	मात्र भी आंप त्रपेच्ा
६	१६	करना है। त्रव उसी	करना उचित है। तथा
		ত্থান যান্ধ	उसी ज्ञान शस्त्र
U	8	निमित्त बली तर्क	निमित्ति को प्रधान

		( २	)
		द्वारा	मानने वाले तर्क द्वारा
ያ	સ	ज्ञरीर भी परद्रव्य	
ዓ	१२	स्वयं को करना	स्वयं को ही करना
		ही, है	ही है ।
የ	२०	-२१ जाओ और बा	<b>द्य जाओ । बाह्य</b>
		त्रभ्यंतर	त्राभ्यंतर
		वृद्धिपूर्वक	बुद्धिपूर्वक
१०	१५	सास्वत	शास्वत
			उपदेश करना कि
		शतसः	যানয়ঃ
१२	३	करा देती है	करा देता है
१३	٢	ऊद्भूति	उद्भूति
88	8	वह	वह त्रभी
१४	ف	त्रानुसंगिक	त्रानुपंगिक
१४	ያ	कृषता कर	कृशताकर
88	१२	चाहिये	चाहिये ।
<b>१</b> ४	१३	त्रागमज्ञान ही	त्रागमज्ञान की
88	१५	महत्	महान्
१४	१७	यावान	यावान्
१५	ى	बाह्य	बाह्य
१५	११	करना । यद्यपि	करना यद्यपि

( )

		( ३	)
१५	१६	चमा की पादुर्भूति	चमा की अप्रादुर्भृति
			कैसे व्यक्त हो ।
१५	89	तो तत्वज्ञान सोतो	तत्वज्ञान, सो तो
१७	લ	ये विद्वत्ता,	ये पत्र विद्वत्ता,
		· ·	कहा है—
१न	94	निवृत्ति	प्रवृत्ति
१८	२०	इसके विना स्याद्वाय	हसके विना, स्याद्वाद
		तावदेव	भावयेद्
२१	8 <b>8</b>	त्याग ही श्रेयोमाग	त्याग है वहां श्रेयो मार्ग
२२	१८	सत्ता परमार्थ की	परमार्थ तत्व की
२३	१	वह	वे
२३	२	हो जाते है ?	हो जाते हैं ?
		61 - mit 6 .	
२३			अध्यवसान द्वारा
	સ્	अध्यवसान में	• •
२३	३ ११	अध्यवसान में	अध्यवसान द्वारा
२३ २३ २४	३ ११ २० १४	अध्यवसान में चीएता यदि ज्ञान जाने अतः अब तमो	त्रध्यवसान द्वारा चीणता यचपि
२३ २३ २४ २६	३ ११ २० १४ ५	अध्यवसान में चीएता यदि ज्ञान जाने अतः अब तमो दुःखसीद	अध्यवसान द्वारा चीणता यचपि ज्ञानी जाने। त्रातः अब दीपसे तमो दुःखसीर
२३ २३ २४ २४ २६ २८	३ ११ २० १४ ५ ११	अध्यवसान में चीणता यदि ज्ञान जाने अतः अब तमो दुःखसीद गर्हा करता,	त्रध्यवसान द्वारा च्रीणता यद्यपि ज्ञानी जाने। त्रातः अब दीपसे तमो
२३ २३ २४ २४ २६ २८	३ ११ २० १४ ५ ११	अध्यवसान में चीएता यदि ज्ञान जाने अतः अब तमो दुःखसीद	अध्यवसान द्वारा चीणता यचपि ज्ञानी जाने। त्रातः अब दीपसे तमो दुःखसीर
२३ २३ २४ २४ २५ २५ २५ २५	३ २१ २० १४ ५ ११ १२ ९	अध्यवसान में चीणता यदि ज्ञान जाने अतः अब तमो दुःखसीद गर्हा करता,	अध्यवसान द्वारा चीणता यचपि ज्ञानी जाने । त्रातः अव दीपसे तमो दुःखसीर गर्हा करता है ।

रहना पडे।

ग्रद्ध ज्ञान प्राप्ति का इच्छुक-

सिं. कस्तूरचंद नायक

पाठक वृन्द ! कई एक कारणों से उपरिलिखित अशुद्धियां हो गई हैं उनको आप पढ़ने के पहिछे झुद्ध करके पढें। जिससे यथार्थ ज्ञान लाभ से वंचित न

— निवेदन —

४२ १८-१९ समवशरण ज्ञान ४४ ॰ गणेशप्रसाद वर्णी त्रापका श. चिं.— गणेशप्रसाद वर्णी ४६ ५ उठ रहा **है** पृथक हो रहा है। <sup>४६</sup>९ ब्रह्मानुभव रवातमान भव

६) (

गुरुवर्य ! इस अपार संसाररूपी जलनिधि में, कोधमानादिक कषायरूपी बलवती तरंगें, मोहरूपी मगरमच्छादिक जलचर एवं मिथ्यात्व कुदेवादिक रूपी बडवानल हैं, जिसमें से प्राणियों को तारने वाली दर्शनरूपी नौका के पतवार ! इस पंच परावर्तन संसाररूपी महागहन अंधकारमय अटवी में भटकने वाले प्राणियों को ज्ञानरूपी सूर्य ! चतुर्गति भ्रमणरूपी दुःखदावानल को चारित्ररूपी महामेघ ! कल्याण-मंदिर की शांतिमय शिखर ! वर्तमान दुःखमय संसार

•२•२०२०२०२०२०२०२०२०२०२०२०२०२०२० प्रातः स्मरणीय परमपूज्य सर्वे गुणालंकृत पंडितप्रवर श्री माननीय न्यायाचार्य पं. गणेशप्रसाद जी वर्णी के चरण कमलों में सादर समर्पित

(120(120(20)) \* (120(120(20)) \*

श्रद्धाञ्चल







## के सर्वोपरि भावज्ञानी त्र्योर निष्कारण जगत् के बंधु !

ऐसे त्रापके मेरुसदश उत्तुंगगुणसंपन्न चरणकमलों को-

संसार दुःख से भयभीत, अ्रेयस्पद का इच्छुक, हस्व अवगाहना का धारक, बाल्क स्पर्शकर पवित्र होना चाहता है। सो कठिन है। अतः दृरसे ही भक्ति पूर्वक अद्धांजलि समर्पित करता है।

आशा है **ऋाप इस सेवक को चरणों की इारण** में छेकर कृपाद्दष्टि रखकर कृतार्थ करेंगे ।

> "आपको मेरे सहदा हैं अनेक" "त्राप तो मेरे लिये हैं सएक"

मिती-ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी । अगे. बीर. नि॰ सं॰ २४६४



## 🛞 श्री जिनायनमः 🋞

# प्रस्तावना

सुहृद् पाठक वृंद,

हम ऐसे अमूल्य ज्ञान रूपी हार को प्रकाशित कर रहे हैं जिसका गुंधन श्री शांतिग्रुणनिधि ज्ञानगुणाकर प्रातः स्मरणीय पूज्य पं. गणेशप्रसादजी वर्णी द्वारा हुत्रा है—

- गुरुवर्य ! त्रापकी चिरकाल की ज्ञान उपासना रूपी वृक्ष से जो मधुर फल प्राप्त हुआ है वह अवइयमेव जीवों के संसार रूपी व्याताप को दूर कर अेयस्पद प्राप्त कराने में समर्थ है ।
- सद्गुरों ! प्रार्थना है कि व्यक्तिगत के लिये लगाया हुआ ज्ञानरूपी वृत्त् से जो मधुरफल प्राप्त हुआ है जिसका कए २ जीवों को अपूर्व सुखास्पद है फिर क्या सर्व जीवों के हितार्थ ज्ञानरूपी बगीचा निर्माए किया जावे तो ब्रद्वितीय शांति प्रदायक

विरोष कारण- उदासीन ब्र॰ मथुरालाल जी इन्दोर वालों ने शांति सिंधु गजट में वर्णी मौजीलाल जी के समाधिलाभार्थ पत्रों को प्रकाशित किया ऐसे निमित्तभूत ब्रह्मचारी जी को कोटिशः धन्यवाद है कि जिनने मेरे उत्साह के खिये अपूर्व विगुल बजाई जिससे ज्ञान स्फूर्ति आत्मा में हुई।

सचा पथप्रदर्शक अनुपम स्थान नहीं होगा ? श्रवश्यमेव होगा। अतः हमारा वारंवार नम्र निवेदन है कि हमारे पुण्योदय से जव तक इस नश्वर शरीर में ज्ञानमय ज्योति विद्यमान है तव तक अवश्यमेव दो शब्दरूपी अमररस अपने ज्ञानसिंधु से प्रदान करें ताकि हम सदृश अज्ञानी जीवों को थोड़ेही में भेद विज्ञान ज्योति सं श्रपना वास्तविक कल्याण मार्ग प्रगट होता रहे ऐसी मेरी हार्दिक भावना है और आशा करता हूं कि यह मेरी सची भावना "कोयल का मधुर स्वर बसंतऋतु में आम्र मौर के निमित्त सदृश" आपको लिखने के लिये वाचाल करेगी।

( 8 )

( ५ )

कारण में कारण- सिंघई कुंवरसेन जी दिवाकर सिवनी महोदय ने ऋहमदाबाद से वर्णी दीपचंद जी के समाधिखाभार्थ पत्र मंगाने में धर्म निमित्त उत्साह बतलाया है तथा इनके प्रकाशित कराने की भी प्रेरणा की है, जिसके लिये आपको कोटिझाः धन्यवाद है।

हर्ष की बात- स्व० हजारीलाल जी के आत्मज खबचंद जी की धर्मपत्नी सौ० राधाबाई ने ५०० प्रतियां और स्व. चौधरी नंनेलाल जी की धर्मपत्नी खिलौना बाई ने २५० प्रतियां इन झानसुधामय पत्रों की छपा कर समाज हितार्थ वितरण कराने की उदारता दिखलाई है जो कि स्त्रीसमाज के लिये एक आदर्श कार्य है। आगामी अन्य महिलायें भी ऐसे महत् पुण्यकार्य के करने में अनुकरण करेंगीं ऐसी आशा है अतः उपरोक्त बाईयों को कोटिशः धन्यवाद है।

हर्ष में हर्ष- उपरोक्त ज्ञानमय पत्रों की उपयोगिता

(ξ)

देखकर स० सिं० छिकोड़ीलाल्जी के आत्मज स० सिं० दमड़ीलाल जी ने ५०० प्रतियां और आयुत् लालचंद जी के आत्मज पन्नालाल जी ने २५० प्रतियां छपाकर और भो वितरण कराने की उदारता प्रगट की है अतः उपरोक्त महानुभाव विद्येष धन्यवाद के पात्र हैं।

धर्म सहानुभूति– इन अनुपम इाानपुंज पत्रों को छुपाने में पंडित शिखरचंद जी ने बहुत कुछ ऋपना ऋमुल्य समय व्यतीत किया है। जहां तहां श्ठोकों का भी ऋर्थ लिखा है। इसके लिये आपको भी कोटिशः धन्यवाद है।

प्रवल इच्छा— जिस दिन से शांतिसिन्धु गजट में इन ज्ञानरत पत्रों को पढ़ा उसी दिन से भावज्ञान का हिंडोला मेरे हृदय में झुलता रहता है। भेद विज्ञान को प्रगट कर शरीरादिक परद्रव्यों में निष्पृहता, अपने स्वरूप में लीनता और कषायों की मंदता आदि गुणों की त्रोर आत्मा सतत् व्यापार करने की चेष्टा करता रहता है।

# अतः इस बालक की यही प्रबल इच्छा हुई कि त्रिय छपाये जावें तो अवश्यमेव सर्व जीव चकोरों

अंतिम निवेदन- ऋंतमें निवेदन यह है कि जब गृहस्थ वर्तों को धारण करते हुये त्रंत में सल्लेखना करते हैं त्रोर जिननें पूर्व में व्रत भी धारण नहीं किये यदि उन जीवों को भी मरण के समय समाधि का लाभ हो जावे तो वे त्रवश्य सद्गति को प्राप्त करते हैं। इसीलिये पूज्य पंडित जी ने उपरोक्त महानुभावों को लक्ष्यकर सर्व साधारण के कल्याण के लिये समाधिमरण का उपदेश दिया। परन्तु इस अमूल्य अनुपम उपदेश को मुनिश्रावक और सामान्य गृहस्थ भी, ज्ञान रहस्य मय शब्दों को पठनकर, अपना आत्म कल्याण कर सकते हैं तथा जिनको वर्तमान दुःखमय संसार में ऐसे महान भावज्ञानी पुरुष का दर्शन दुलभ हो अवश्य उनके रामवाण तुल्य अचुक ज्ञानोप-देश वचन पठनकर वास्तविक प्रत्यत्त सुखामृत पान कर सकते हैं और अंत में समाधि का लाभ उठा सकते हैं ।

( ق )

( 2 )

को मेरे समान पूज्य पंडित जी के मुखेन्दु से निकली हुई वाग्चन्द्रिका पान करते हुये ही तत्काल आल्हादित करेगी । ऐसी मुभे पूर्ण बाद्या है ।

अंत में एक बार उन्हीं सद्गुरु को प्रणाम कर यह प्रस्तावना प्रर्ण करता हुं क्योंकि उनकी मूर्ति मेरे हृदय में सदा विराजमान रहती है।

> प्रातः स्मरणीय ज्ञानशिरोमणि पूज्य पं० जी का भक्त, कस्तूरचंद जेन नायक,

> > जबलपुर ।



For Private and Personal Use Only



ये पत्र स्व० उदासीन ब्र० मौजीलालजी सागर निवासी वालों के समाधिलाभार्थ उनके प्रत्युत्तर में पूज्य पं० गणेशप्रशादजी वर्णी के द्वारा लिखे गये हैं। एक एक पंक्तिमें आत्मरसिकता भल्क रही है। अतः जब कभी मन स्थिर हो शान्तिपूर्वक प्रत्येक वाक्य का परिशीलन करके उसके मंतव्य को हृदयंगत करना चाहिये। (पत्र नहीं, ये मोक्षमार्ग में प्रवेश करने के लिये वास्तविक रब हैं।)



गोग्य शिष्टाचार !

सत्यदान तो लोभ का त्याग है। और उसको मैं चारित्र का अंश मानता हूं। मूर्छी की

अर्थ-यह सिद्धांत उदार चित्त और उदारचरित्रवाले मोर्चार्थियों को सेवन करना चाहिये कि मैं एक ही शुद्ध (कर्मरहित) चैतन्य स्वरूप परम ज्योतिवाला सदैव हूं। तथा ये मेरे भिन्नलक्षणवाले नाना भाव प्रगट होते हैं। वे मैं नहीं हूं क्योंकि वे संपूर्ण मेरे भाव परद्रव्य हैं।

सिद्धांतोऽयमुदात्त चित्तचरितेमें चार्थिभिः सेव्यतां। शुद्धं चिन्मयमेकमेव परमज्योतिस्सदैवास्म्यहम् ॥ एते मे तु समुछसति विविधा भावाः पृथग्लच्तणाः। स्तेऽहं नास्मि यतोऽत्र ते मम परद्रव्यं ममग्रा अपि॥

निवृत्ति ही चारित्र है। हमको द्रव्पत्याग में पुण्य बंध की ओर दृष्टि न देना चाहिये, किन्तु इस द्रव्यसे ममत्वनिवृत्तिद्वारा झुद्धोपयोगका वर्धक दान समफना चाहिये। वास्तविक तत्त्व ही निवृत्तिरूप है। जहां उभयपदार्थ का बंध है वही संसार है। और जहां दोनों वस्तु स्वकीय २ गुणपर्यायों में परिणमन करते हैं वही निवृत्ति है यही सिद्धांत है। कहा भी है-

( २ )

( ३ )

इस श्लोक का भाव इतना सुन्दर और रुचिकर है जो हृदय में आते ही संसारका आताप कहां जाता है पता नहीं लगता। आप जहां तक हो अब इस समय शारीरिक अवस्था की ओर दृष्टि न देकर निजात्मा की ओर लक्ष्य देकर उसीके स्वास्थ्य की औषधिका प्रयत्न करना। शरीर परद्रव्य है, उसकी कोई भी अवस्था हो उसका ज्ञाता दृष्टा ही रहना। सो ही समयसार में कहा है।

## - गाथा -

ंको णाम भणिज बुहो परदब्वं मम इम हवदि दब्वं ॥ अप्पाणमप्पणे परिगहंतु णियदं वियाणंतो ॥

भावार्थ — यह परद्रव्य मेरा है ऐसा ज्ञानी पंडित नहीं कह सकता। क्योंकि ज्ञानी जीव तो त्रात्मा को ही स्वकीय परिग्रह मानता या समफता है।

यद्यपि विजातीयदो द्रव्यों से मनुष्य पर्याय की उत्पत्ति हुई है किन्तु विजातीय २ दो द्रव्य मिलकर सुधाहरिद्रावत् एकरूप नहीं परिणमे हैं। वहां तो वर्णगुण दोनों का एकरूप परिणमना कोई आपत्ति-जनक नहीं है किन्तु यहां पर एक चेतन त्रीर अन्य ( 8 )

श्वचेतन द्रव्य हैं। इनका एकरूप परिणमना न्याय प्रतिकूल है। पुद्रल के निमित्त को प्राप्त होकर ज्रात्मा रागादिकरूप परिणम जाता है। किरभी रागादिक भाव औदयिक हैं अतः बंधजनक हैं आत्मा को दुःख जनक हैं अतः हेय हैं परंतु शरीर का परिणमन ज्रात्मा से भिन्न हैं। अतः न वह हेय है ज्रोर न वह उपादेय है। इसही को समयसार में श्री महर्षि कुंदकुंदाचार्य ने निर्जराधिकार में लिखा है।

### - गाथा -

इसीसे सम्यग्द्दष्टी के परद्रव्य के नानाप्रकार के परिणमन होते हुवे भी हर्ष विषाद नहीं होता । अतः त्रापको भी इस समय शरीर की क्षीण अवस्था होते हुवे कोई भी विकल्प न कर तटस्थ ही रहना हितकर है ( 4 )

चरणानुयोग में जो परद्रव्यों को ग्रुभाग्नुभ में निमित्तत्व की अपेत्ता हेयोपादेय की व्यवस्था की है। वह अल्प प्रज्ञके अर्थ है। आप तो विज्ञ है। अध्यव-सान को ही बंधका जनक समफ उसीके त्याग की भावना करना और निरंतर "एगो मे सासदो आदा णाणदंसणलक्ष्वणो" अर्थात् ज्ञानदर्शनात्मक जो आत्मा है वही उपादेय है। रोष जो बाह्य पदार्थ हैं वे मेरे नहीं हैं।

मरए क्या वस्तु है ? आयुके निषेक पूर्ण होने पर मनुष्य पर्याय का वियोग तथा आयुके सद्भाव में पर्यायका संवंध सो ही जीवन। अब देखिये जैसे जिस मंदिर में हम निवास करते हैं उसके सद्भाव असद्भाव में हमको किसी प्रकार का हानिऌाभ नहीं, तब क्यों हर्ष विषाद कर अपने पवित्र भावों को कलुषित किया जावे। जैसे कि कहा है।

## – श्लोक –

प्राणोच्छेदमुदाहरान्ति मरणं प्राणाः किलास्यात्मनो ज्ञानं सत्स्वयमेव शाश्वततया नोच्छिद्यते जातुचित् ॥ अस्यातो मरणंन किंचिद् भवेत्तद्धीः कुतो ज्ञानिनो निःशङ्कः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विन्दति॥

### 

(अर्थ-प्राणों के नाश को मरण कहते हैं। और प्राण इस आत्मा का ज्ञान है। वह ज्ञान सत् रूप स्वयं ही नित्य होने के कारण कभी नहीं नष्ट होता है। अतः इस आत्मा का कुछ भी मरण नहीं है तो फिर ज्ञानी को मरण का भय कहां से हो सकता है। वह ज्ञानी स्वयं निःशङ्क होकर निरंतर स्वाभाविक ज्ञान को सदा प्राप्त करता है।)

इस प्रकार आप सानन्द ऐसा मरण का प्रयास करना जो परंपरा मातास्तन पान से बच जावो। इतना सुन्दर अवसर हस्तगत हुवा है, त्रवश्य इससे लाभ छेना।

आत्मा ही कल्याण का मंदिर है अतः परपदार्थों की किंचित् मात्र भी अपेक्षा न करें । अब पुस्तक द्वारा झानाभ्यास करने की आवइयकता नहीं । अब तो पर्याय में घोर परिश्रम कर स्वरूप के अर्थ मोच्च-मार्ग का अभ्यास करना है । अब उसी ज्ञान शास्त्र को रागद्वेषशञ्ज्ओं के ऊपर निपात करने की आवश्यकता है । यह कार्य न तो उपदेष्टा का है और न समाधिमरण में सहायक पंडितों का है । अबतो

#### ( •)

भ्रन्य कथाओं के श्रवए करने में समय को न देकर उस शत्रु सेना के पराजय करने में सावधान होकर यत्न पर हो जावो ।

यद्यपि निमित्त बली तर्क द्वारा बहुतसी च्रापत्ति इस विषय में ला सकते हैं। फिर भी कार्य करना च्रंत में तो च्रापही का कर्तव्य होगा। च्रतः जब तक आपकी चेतना सावधान है, निरंतर स्वात्म– स्वरूप चिंतवन में लगादो।

श्री परमेष्ठीका भी रुमरण करो किन्तु ज्ञायक की त्रोर ही लक्ष्य रखना क्योंकि मैं "ज्ञाता दृष्टा"हूं, ज्ञेय भिन्न हैं, उसमें इष्टानिष्ट विकल्प न हो यही पुरुषार्थ करना और त्रंतरंग में मूर्छी न करना तथा रागादिक भावों को तथा उसके वक्तात्रों को दूरही से त्यागना। मुफे त्रानंद इस बात का है कि झांप निःशल्य हैं। यही त्रापके कल्याण की परमोषधि है।

॥ इति ॥





महाशय योग्य शिष्टाचार-

त्रापके शरीर की ऋवस्था प्रत्यहं क्षीण हो रही है। इसका हास होना खाभाविक है। इसके हास और वृद्धि से हमारा कोई घात नहीं, क्योंकि आपने निरंतर ज्ञानाभ्यास किया है त्रतः त्राप इसे खयं जानते हैं अथवा मान भी लो हारीर के हौथिल्य से तद् अवयवभूत इंद्रियादिक भी शिथिल होजाती हैं तथा द्रव्येंद्रिय के विकृत भाव से भावेन्द्रिय स्वकीय कार्य करने में समर्थ नहीं होती है किन्तू मोहनीय उपशम जन्य सम्यक्त्व की इसमें क्या विराधना हुई। मनुष्य शयन करता है उसकाल जाग्रत अवस्था के सददा ज्ञान नहीं रहता किन्तु जो सम्यग्दर्शन गुण संसार का अंतक है उसका आंशिक भी घात नहीं होता। अतएव अपर्याप्त अवस्था में भी सम्यग्दर्शन माना है जहां केवल तैजस कार्माण शरीर त्रौर उत्तर कालीन दारीर की पूर्णता भी नहीं तथा आहारादि वर्गणा के अभाव में भी सम्यग्दर्शन का सदाव

### 

रहता है। अतः आप इस बात की रंचमात्र आकुल्ता न करें कि हमारा दारीर क्षीण हो रहा है क्योंकि शरीर भी पर द्रव्य है उसके संबंध से जो कोई कार्य होने वाला है वह हो ऋथवा न हो परंतु जो वस्तु आत्मा ही से समन्वित है उसकी क्षति करने वाला कोई नहीं, उसकी रचा है तो संसार तट समीपही है। विशेष बात यह है कि चरणानुयोग की पद्धति से समाधि के ऋर्थ बाहा संयोग अच्छे होना विधेय है किन्तु परमार्थ दृष्टि से निज प्रवलतम अद्धान ही कार्य कर है। आप जानते हैं कि कितने ही प्रबल ज्ञानियों का समागम रहे किन्तु समाधिकर्ता को उनके उपदेश अवणकर विचार तो स्वयं को करना पड़ेगा। जो मैं एक हूं चैतन्य हूं रागादिक शून्य हूं यह जो सामग्री देख रहा हूं पर जन्य है, हेय है, उपादेय निज ही, है परमात्मा के गुणगान से परमात्मा द्वारा परमात्म पद की प्राप्ति नहीं किन्तु परमात्मा द्वारा निदिष्ट पथ परं चलने से ही उस पद का लाभ निश्चित है ग्रतः सर्व प्रकार के भंभटों को छोड़कर भाई साहब ! श्वब तो केवल बीतराग निर्दिष्ट पथ पर ही आभ्यंतर परिणाम से आरूढ़ हो जाओ और बाद्य त्याग की वहीं तक मर्यादा है जहां तक निज भाव में बाधा न पहुंचे । ऋपने परिणामों के परिणमन

www.kobatirth.org

को देखकर ही त्याग करना क्योंकि जैन सिद्धांत में सत्य पथ मूर्छा त्याग वाले को ही होता है अतः जो जन्म भर मोच्त्तमार्ग का अध्ययन किया उसके फलका समय है इसे सावधानतया उपयोग में लाना। यदि कोई महानुभाव अंत में दिगंबर पद की सम्मति देवे तब अपनी अभ्यंतर विचारधारा से कार्य लेना। वास्तव में अंतरंग वृद्धिपूर्वक मूर्छा न हो तभी उस पद के पात्र बनना। इसका भी खेद न करना कि हम शक्तिहीन हो गये अन्यथा अच्छी तरह से यह कार्य सम्पन्न करते। हीन शक्ति दारीर की दुर्बलता है। आभ्यंतर अद्धा में दुर्बलता न हो। अतः निरंतर यही भावना रखना।

"एगोमेसासदो आदाणाण दंसण लक्खणो

सेमामे वाहिरा भावा सब्वे संजोग लक्खणा " (त्रर्थ-एक मेरी साख्वतत्रात्मा ज्ञान दर्शन टच्लणमयी है रोष जो बाहिरी भाव हैं वे मेरे नहीं हैं, सर्व संयोगी भाव हैं॥")

अतः जहां तक बने स्वयं आप समाधान पूर्वक अन्य को समाधि का उपदेश कर समाधिस्थ आत्मा अनंत शक्तिशाली है तब यह कौन सा विशिष्ट कार्य है। वह तो उन शत्रुओं का चूर्ण कर देता है जो अनंत संसार के कारण हैं। इति ( ११ )



इस संसार समुद्र में गोते खाने वाछे जीवों को केवल जिनागम ही नौका है। उसका जिन भव्य पाणियों ने ऋाश्रय लिया है वे अवश्य एक दिन पार होंगे। आपने लिखा कि हम मोक्ष मार्ग प्रकाश की दो प्रति भेजते हैं सो स्वीकार करना, भला ऐसा कौन होगा जो इसे स्वीकार न करें। कोई तीव्र कषायी ही ऐसी उत्तम वस्तु अनंगीकार करे तो करे परंतु हमतो शतसः धन्यवाद देते हये आपकी भेंट को स्वीकार करते हैं। परंतु क्या करें निरंतर इसी चिन्ता में रहते हैं कि कब ऐसा राभ समय आवे जो वास्तव में हम इसके पात्र हों ग्रभी हम इसके पात्र नहीं हुये अन्यथा तुच्छ सी तुच्छ बातों में नाना कल्पनायें करते हुये दुखी न होते । अब भाई साहब जहां तक वनें हमारा और आपका मुख्य कर्त्तव्य रागादिक के दूर करने का ही निरंतर रहना चाहिये। क्योंकि आगम ज्ञान श्रीर श्रद्धा से बिना संयतत्व भाव के मोक्षमार्ग की सिद्धि नहीं अतः सब प्रयत्न ( १२ )

का यही सार होना चाहिये जो रागादिक भावों का अस्तित्व आत्मा में न रहे। ज्ञान वस्तु का परिचय करा देती है ऋर्थात ऋज्ञान निवृत्ति ज्ञान का फल है किन्तु ज्ञान का फल उपेचा नहीं, उपेचाफल चारित्र का है। ज्ञान में आरोप से वह फल कहा जाता है जन्म भर मोच मार्ग विषयक ज्ञान संपादन किया अब एकबार उपयोग में लाकर उसे आस्वाद लो त्राज कल चरणानुयोग का अभिप्राय लोगों ने पर वस्तु के त्याग और ग्रहण में ही समभ रक्खा है सो नहीं। चरणानुयोग का मुख्य प्रयोजन तो स्वकीय रागादि के मेंटने का है परंतु वह पर वस्तु के संबंध से होते हैं अर्थात पर वस्तु उसका नो कर्म होती है अतः उसको त्याग करते हैं मेरा उपयोग अब इन बाह्य वस्तुओं के संबंध से भयभीत रहता है। मैं तो किसी के समागम की अभिलाषा नहीं करता हूं। **ज्रापको भी सम्मति देता हूं कि** सब से ममत्व हटाने की चेष्टा करो यही पार होने की नौका है जब परमें ममत्व भाव घटेगा तब स्वयमेव निराश्रय अहंबुदि घट जावेगी क्योंकि ममत्व श्रीर अहंकार का अविनाभावी संबंध है एक के बिना अन्य नहीं रहता। बाईजी के बाद मैंने देखा कि ऋष तो स्वतंत्र ह

### ( १३ )

दान में सुख होता होगा इसे करके देखूं ६०००) रुपया मेरे पास था सर्व त्याग कर दिया परंतु कुछ भी शांतिका चंदा न पाया। उपवासादिक करके शांति न मिली, पर की निंदा और आत्मप्रशंसा से भी ज्ञानंद का ज्रंकुर न हुआ भोजनादि की प्रक्रिया से भी छेश शांति को न पाया। अतः यही निश्चय किया कि रागादिक गये बिना शांति की जद्भूति नहीं ज्रतः सर्व व्यापार उसी के निवारण में लगा देना ही शांति का उपाय है वाग्जाल के लिखने से कुछ भी सार नहीं।

## ॥ इति ॥



For Private and Personal Use Only





मैं यदि अन्तरङ्ग से विचार करता तो जैसा त्राप लिखते हैं मैं उसका पात्र नहीं, क्योंकि पात्रता का नियामक क़ुरालता ताका ग्रभाव है। वह त्रभी कोसों दूर है। हां यह अवश्य है यदि योग्य प्रयास किया जावेगा तब दुर्लभ भी नहीं, वक्तृत्वादि गुए तो आनुसंगिक हैं । श्रेयोमार्ग की सन्निकटता जहां जहां होती है वह वस्तु पूज्य है अतः हम और आप को बाह्य वस्तु जातमें मूर्छो की कृषताकर ज्ञात्म तत्त्व को उत्कर्ष बनाना चाहिये। ग्रन्थाभ्यास का प्रयोजन केवल ज्ञानार्जन ही तक अवसान नहीं होता साथ ही में पर पदार्थों से उपेक्षा होनी चाहिये आगमज्ञान ही प्राप्ति और है किन्तु उसकी उपयोगिता का फल और ही है। मिश्री की प्राप्ति और स्वादता ਸ਼ੋਂ महत अन्तर है यदि स्वाद का अनुभव न हुआ तब मिश्री पदार्थ का मिलना केवल अन्धे की लालटेन के सदृश है अतः अब यावान पुरुषार्थ है वह इसी में कटिवद्ध होकर लगादेना ही श्रेयस्कर है। जो आगम ( १५ )

ज्ञान के साथ २ उपेचा रूप स्वाद का लाभ हो जावे। आप जानते ही हैं मेरी प्रकृति अस्थिर है तथा प्रसिद्ध हैं परंतु जो ऋर्जित कर्म है उनका फल तो मुभे ही चखना पड़ेगा अतः कुछ भी विषाद नहीं।

विषाद इस बात का है जो वास्तविक आत्म तत्व का घातक है उसकी उपक्षीणता नहीं होती। उसके ऋर्थ निरंतर प्रयास है। बाह्य पदार्थ का छोड़ना कोई कठिन नहीं । किन्तु यह नियम नहीं क्योंकि <del>श्र</del>ध्यवसान के कारण छूटकर भी <del>श्</del>रध्यवसान की उत्पत्ति अन्तरतल वासना से होती है। उस वासना के विरुद्ध इास्त्र चलाकर उसका निपात करना । यद्यपि उपाय निर्दिष्ट किया है। परंत फिर भी वह क्या है केवल इाब्दों की सन्दरता को छोडकर गम्य नहीं । रष्टांत तो स्पष्ट है अग्निजन्य उष्णता जो जल में है उसकी भिन्नता तो दृष्टि विषय है। यहां तो कोध से जो क्षमा की पादुर्भूति है वह यावत कोध न जावे तब तक कैसे व्यक्त है। ऊपर से कोघ न करना चमा का साधक नहीं। आशय में वह न रहे यही तो कठिन बात है। रहा उपाय तो तत्वज्ञान सो तो हम आप सर्व जानते ही हैं किन्तु फिर भी कुछ गुढ़ रहस्य है जो महानुभावों के समागम की अपेक्षा रखता है.

## ( १६ )

## यदि वह न मिछे तब आत्मा ही आत्मा है उसकी सेवा करना ही उत्तम है उसकी सेवा क्या है "ज्ञाता रष्टा" और जो कुछ अतिरिक्त है वह विकृत जानना।

॥ इति ॥

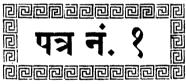


For Private and Personal Use Only





ये पत्र स्व० उदासीन ब्र० दीपचंद जी वर्णी के समाधिलाभार्थ उनके प्रत्युत्तर में पूज्य पं० गणेश प्रसाद जी वर्णी के द्वारा लिखे गये हैं। उपरोक्त पत्रों से ये विद्वत्ता, भावपूर्ण, सारगभिंत त्र्योर विशेष ज्ञान ज्योति के जाग्रत करने वाले हैं।



श्रीमान् वर्णी जी-योग्य इच्छाकार !

पत्रा न देने का कारण उपेक्षा नहीं किन्तु अयोग्यता है। मैं जब अंतरङ्ग से विचार करता हूं तो उपदेश देने की कथा तो दृर रही। अभी मैं सुनने और बांचने का भी पात्रा नहीं। वचन चतुरता से किसी को मोहित कर छेना पाण्डित्य का परिचायक नहीं। श्री कुंदकुंदाचार्य ने कहा है।

### ( १८ )

किं काहादे वणवासो कायकिलेमोविचित्त उववासो ॥ अज्मयणमौणपहुदी समदारहियस्स समणस्त ॥ ऋर्थ-समता के बिना वन।नेवास और काय क्लेबा तथा नाना उपवास तथा अध्ययन मौन आदि कोई उपयोगी नहीं। अतः इन बाह्य साधनों का मोह व्यर्थ ही है। दीनता और स्वकार्थ में अतत्परता ही मोक्षमार्ग का चातक है। जहां तक हो इस पराधीनता के भावों का उच्छेद करना ही हमारा ध्येय होना चाहिये। विशेष कुछ समभमें नहीं आता। भीतर बहत कुछ इच्छा छिखने की होती है परंतु जब स्वकीय वास्तविक दशापर दृष्टि जाती है तब अश्रधारा का प्रवाह बहने लगता है। हा आत्मन् ! तूने यह मानव पर्याय को पाकर भी निजतत्व की ओर लक्ष्य नहीं दिया। केवल इन बाह्य पंचेद्रिय विषयों की निवृत्ति में ही संतोष मानकर संसार को क्या अपने स्वरूप का अपहरण करके भी लडिजत न हन्रा।

तद्विषयक अभिलाषा की अनुत्पत्ति ही चारित्र है। मोक्षमार्ग में संवरतत्व ही मुख्य है। निर्जरा तत्व की महिमा इसके बिना स्याद्वाद शून्यागम अथवा जीवन शून्य शरीर अथवा नेत्रहीन मुख की ( 29)

तरह है। अतः जिन जीवों को मोक्ष रुचता है उनका यही मुख्य ध्येय होना चाहिये कि जो अभिलाषाओं के उत्पादक चरणानुयोगों की पद्धति प्रतिपादित साधनों की आर लक्ष्य स्थिर कर निरंतर खात्मोत्थ सुखामृत के अभिलाषी होकर रागादि रात्रुओं की प्रवल सेना का विध्वंस करने में भागीरथ प्रयत्न कर जन्म सार्थक किया जावे किन्तु व्यर्थ न जावे इसमें यत्नपर होना चाहिये। कहांतक प्रयत्न करना उचित है ? जहांतक पूर्ण ज्ञान की पूर्णता न होय।

" तावदेव भेद विज्ञान मिदमच्छिन्न धारया ।

यावतावत्पर।च्युत्वा ज्ञानं ज्ञाने प्रतिष्ठितम् ॥" (अर्थ-तव तक ही यह भेद विज्ञान ऋखंडधारा से है कि जब तक परद्रव्य से रहित होकर ज्ञान ज्ञानमें (अपने स्वरूपमें) ठहरता है।

क्योंकि सिद्धि का मूलमंत्र भेद विज्ञान ही है। बही श्री आत्मतत्व रसास्वादी अम्रतचंद्र सुरिने कहा है-

"भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन ॥ तस्यैवाभावतो बद्धा बद्धा ये किल केचन ॥"

### ( २० )

चर्थ-जो कोई भी सिद्ध हुये हैं वे भेद विज्ञान से ही सिद्ध हुये हैं और जो कोई बंधे हैं वे भेदविझान के न होने से ही बंध को प्राप्त हुये हैं।

अतः अब इन परनिमित्तक श्रेयोमार्ग की प्राप्ति के प्रयत्न में समयका उपयोग न करके स्वावलंबन की त्रोर दृष्टि ही इस जर्जरावस्था में महती उपयोगिनी रामवाण तुल्य त्रचूक औषधि है। तदुक्तम् —

इतो न किंचित् परतो न किंचित् यतो यतो यामि ततो न किंचित् ॥ विचार्य पश्यामि जगन्न किंचित् स्वात्मावबोधादाधिकं न किंचित् ॥

अर्थ-इस तरफ कुछ नहीं है और दूसरी तरफ भी कुछ नहीं है तथा जहां जहां में जाता हुं वहां वहां भी कुछ नहीं है। विचार करके देखता हूं तो यह संसार भी कुछ नहीं है। स्वकीय आत्मज्ञान से बढ़कर कोई नहीं है।

इसका भाव विचार स्वावलंबन का शरण ही संसारबंधन के मोचन का मुख्य उपाय है। मेरी तो यह श्रद्धा है जो संवर ही सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र का मुल है। ( २१ )

मिथ्यात्वकी अनुत्पत्तिका नाम ही तो सम्यग्दर्शन है। और अज्ञान की अनुत्पत्तिका नाम सम्यग्ज्ञान तथा रागादिक की अनुत्पत्ति यथारव्यात चारित्र और योगानुत्पत्ति ही परम यथारव्यात चारित्र है। अतः संवर ही दर्शनज्ञानचारित्राराधना के व्यपदेश को प्राप्त करता है तथा इसी का नाम तप है। क्योंकि इच्छा निरोध का नाम ही तप है।

मेरा तो इड़ विश्वास है कि जो इच्छाका न होना ही तप है। अतः तप आराधना भी यही है। इस प्रकार संवर ही चार आराधना है क्रतः जहां पर से श्रेयोमार्ग की आकांक्षाका त्याग ही श्रेयोमार्ग है।

> त्रापका द्यु. चिं.-गणेशप्रसाद वर्णी



आत्मा, आत्मा संबंधी रागादिक की उत्पत्ति में स्वयं कदाचित् निमित्तता को प्राप्त नहीं होता है अर्थात् आत्मा स्वकीय रागादिक के उत्पन्न होने में अपने आप निमित्त कारण नहीं है किन्तु उनके होने में परवस्तु ही निमित्त है जैसे अर्ककान्त मणि स्वयं अग्निरूप नहीं परणमता है किन्तु सूर्य किरण उस परिणमन में कारण है। तथापिसत्ता परमार्थ की

न जातु रागादिनिमित्त भावमात्मात्मनो याति यथार्ककान्तः ॥ तस्मिन् निमित्तं पर संग एव वस्त स्वभावोऽयमुदेति तावत् ॥

श्रीयुत महानुभाव पं० दीपचंद जी वर्णी-इच्छाकार ! कारणकूट अनुकूल के असद्भाव में पत्र नहीं दे सका । चमा करना त्रापने जो पत्र लिखा वास्तविक पदार्थ ऐसा ही है । अब हमें आवइयकता इस बात की है कि प्रभू के उपदेश के अनुकूल प्रभू की पूर्वा-वस्थावत् त्राचरण द्वारा प्रसुइव प्रभुता के पात्र हो जावें यद्यपि अध्यवसान भाव पर निमित्तक हैं । यथा-



( २२ )

www.kobatirth.org

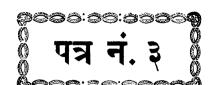
( २३ )

गवेषणा में वह निमित्ता क्या बलात्कार अध्यवसान भाव के उत्पादक हो जाते है ? नहीं; किन्तु हम स्वयं अध्यवसान में उन्हें विषय करते हैं। जब ऐसी वस्तु मर्यादा है। तब पुरुषार्थकर उस संसार जनक भावों के नाश का उद्यम करना ही हम लोगों को इष्ट होना चाहिये। चरणानुयोग की पद्धति में निमित्त की मुख्यता से व्याख्यान होता है। और अध्यात्म शास्त्र में पुरुषार्थ की मुख्यता और उपादान की मुख्यता से व्याख्यान पद्धति है। और प्रायः हमें इसी परिपाटी का अनुसरण करना ही विशेष फलप्रद होगा। शरीर की चीणता यदि तत्त्वज्ञान में बाह्यदृष्टि से कुळु बाधक है तथापि सम्यग्ज्ञानियों की प्रवृत्ति में उनना बाधक नहीं हो सकती । यदि वेदना की अनुभूति में विपरीतता की कणिका न हो तब मेरी समफ में हमारी जान चेतना की कोई चति नहीं हैं।

विशेष नहीं लिख सका। आजकल यहां मलेरिया का प्रकोप है। प्रायः बहुत से इसके ल्दय हो चुके हैं। आप लोगों की अनुकंपा से मैं अभी तक तो कोई आपत्ति का पात्र नहीं हुआ। कल की दिव्य ज्ञान जाने अवकाश पाकर विशेष पत्र लिखने की चेष्टा करूंगा। आर. शु. चिं.—

गणेशप्रसाद वर्णी.

यह केवल मोहज परिणाम की वासना है। आपके साहस ने आपमें अपूर्व स्फ़र्ति उत्पन्न कर दी है। यही रफ़र्ति त्रापको संसार यातनात्रों से मक्त करेगी। कहने और लिखने और वाक् चातुर्य्य में मोच् मार्ग नहीं। मोचमार्गका अंकुर तो अंतःकरण से निज पदार्थ में ही उदय होता है। उसे यह परजन्य मन, बचन, काय क्या जानें। यह तो पुद्धल द्रव्य के विलास हैं जहां पर इन पुद्धल की पर्यायों ने ही नाना प्रकार के नाटक दिखाकर उस ज्ञाता दृष्टा को इस संसार चक्र का पात्र बना रक्खा है। अतः श्वय तमो-राशि को भेदकर और चन्द्र से परपदार्थ जन्य आताप को इामन कर सुधा समुद्र में च्रवगाहन कर वास्तविक सचिदानंद होने की योग्यता के पात्र बनिये। वह पानता आपमें है। केवल साहस करने का विलंबहै।अब इस अनादि संसार जमनी कायरता को दग्ध करने से



इच्छाकार ! त्रापका पत्र आया । त्रापके पत्र से मुभे हर्ष होता है और त्रापको मेरे पत्र से हर्ष होता है।

श्रीयुत महाराय दीपचंद जी वर्णी-योग्य

( २४ )

,झा. रा. चिं. कणेक्सप्रसाट वर्णी.

लाभ- लाभ तो आभ्यन्तर विशुद्धि से है। विशुद्धि का प्रयोजन भेद ज्ञान है। भेद ज्ञान का कारण निरन्तर ऋध्यात्मग्रन्थों की चिन्तना है । अतः इम दशा में परमात्म प्रकाशग्रन्थ चापको चत्यन्त उपयोगी होगा। उपयोग सरल रीति से इस ग्रन्थ में संलग्न होजाता है। उपक्षीण काय में विशेष परिश्रम करना स्वास्थ्य का बाधक होता है अतः आप सानन्द निरा-कुल्ता पूर्वक धर्मध्यान में अपना समय यापन कीजिये । शरीर की दजा तो अब क्षीए सन्मुख हो रही है। जो दशा आपकी है वही प्रायः सर्व की है। परंतु कोई भीतर से दुःखी है तो कोई बाह्य से दुःखी है। आपको शारीरिक व्याधि है जो वास्तव में अघाति कर्म असाताकर्म जन्य हैं । वह आत्मगुए घातक नहीं । त्राभ्यंतर व्याधि मोह जन्य होती है। जोकि आत्म गुए घातक है। अतः त्राप मेरी सम्मति त्रनुसार वास्तविक दुःख के पात्र नहीं—ञ्चतः ञ्रापको ज्रव बड़ी प्रसन्नता इस तत्त्व की होनी चाहिये जो मैं त्राभ्यंतर रोग से मुक्त हूं।

( - २५ <sup>३८</sup>)

ही कार्य सिद्धि होगी। निरन्तर चिन्ता करने से क्या

#### ( २६ )

पं. छोटेलाल से दर्शन विद्युद्धि । भाई सा॰ एक धर्मात्मा और साहसी वीर हैं उनकी परिचर्या करना वैयावृत्य तप है । जो निर्जरा का हेतु है । हमारा इतना द्युभोदय नहीं जो इतने धीर वीर वरवीर दुखसीद बन्धु की सेवा कर सकें ।









श्रीयुत् वर्णी जी-योग्य इच्छाकार

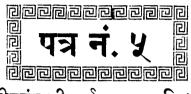
पत्र मिला मैं बराबर आपकी स्मृति रखता हूं किन्तु ठीक पतान होने से पत्र न दे सका। ज्ञमा करना । पैदल यात्रा आप धर्मात्माओं के प्रसाद तथा पार्श्वनाथ प्रभु के चरण प्रसाद से बहुत ही उत्तम भावों से हुई। मार्ग में अपूर्व शांति रही। कंटक भी नहीं लगा। तथा आभ्यन्तर की भी अशान्ति नहीं हुई । किसी दिन तो १९ मील तक चला । खेद इस बात का रहा कि झाप और बाबा जी साथ में न रहे। यदि रहते तो वास्तविक आनंद रहता । इतना पुण्य कहां-बन्धवर ? आप श्री मोचमार्ग प्रकाश और समाधिशतक समयसार का ही स्वाध्याय करिये। त्र्यौर विशेष त्याग के विकल्प में न पड़िये। केवल त्तमादिक परिणामों के द्वारा ही वास्तविक आत्मा का हित होता है | काय कोई वस्तू नहीं तथा ञ्रापही स्वयं कृश हो रही है। उसका क्या विकल्प। भोजन स्वयमेव न्यून होगया है जो कारण बाधक है आप

( २८ )

बुद्धिपूर्वक स्वयं त्याग रहे हैं। मेरी तो यही भावना हे-प्रसु पार्श्वनाथ त्रापकी त्रात्माको इस बंधन के तोड़ने में ऋपूर्व सामर्थ्य दें । ऋापके पत्र से त्रापके भावों की निर्मलता का त्रजुमान होता है । स्वतंत्र भाव ही आत्म कल्याण का मूल मंत्र है। क्योंकि त्रात्मा वास्तविक दृष्टि से तो सदा हुद्ध ज्ञानानंद स्वभाव वाला है । कर्म कलंक से ही मलीन हो रहा है। सो इसके पृथक करने की जो विधि है उस पर आप आरूढ़ हैं। बाह्य किया की छुटि आत्म परिणाम का बाधक नहीं और न मानना ही चाहिये। सम्यग्दष्टि जो निन्दा तथा गर्हा करता, वह अशुद्धो-पयोग की है न कि मन, वचन, काय के व्यापार की। इस पर्याय में हमारा आपका तभी संबंध हो । परंत मुफे ग्रभी विश्वास है कि हम और आप जन्मान्तर में अवश्य मिलेंगे। अपने स्वास्थ्य संबंधी समाचार **ग्रवश्य एक मास में १ वार दिया करें —** मेरी चापके भाई से दर्शन विद्युद्धि।

चैत्र सुदी १ संवत् १९९३

श्रा. रा. चिं. गणेशप्रसाद वर्णी ( २९ )



श्रीयुत पं. दीपचंद जी धर्मरत्न−इच्छामि ।

पत्र पढ़कर सन्तोष हुत्रा। तथा त्रापका त्रभिप्राय जितनी मण्डली थी सबको आवण प्रत्यच्च करा दिया। सर्व लोक त्रापके त्रांशिक रत्नत्रय की भूरिशः प्रसंशा करते हैं।

आपने जो पं. भूधरदास जी की कविता लिखी सो ठीक है। परन्तु यह कविता आपके ऊपर नहीं घटती। आप सूर हैं। देहकी दद्या जैसी कविता में कवि ने प्रतिपादित की है तदनुरूप ही है परन्तु इसमें हमारा क्या घात हुआ ? यह हमारी वुद्धिगोचर नहीं हुआ। घट के घात से दीपक का घात नहीं होता। पदार्थ का परिचायक ज्ञान है। अतः ज्ञान में ऐसी अवस्था शरीर की प्रतिभासित होती है एतावत् क्या ज्ञान तद्रूप हो गया।

## - श्लोक -

पूर्णेकाच्युत शुद्ध बोध महिमा बोधो न बोध्यादयम् ॥ पायात्कामपि विकियां ततः इतो दीपः प्रकाश्यादपि ॥ ( ३० )

तद्वस्तुस्थिति बोध बन्ध्यधिषणा एते किमज्ञानिनो॥ रागद्वेषमपि भवन्ति सहजां मुंचत्युदासीनताम् ॥ पूर्ण अद्वितीय नहीं च्युत है ग्रुद्ध वोध की महिमा जाकी ऐसा जो बोध है वह कभी भी बोध्य पदार्थ के निमित्त से प्रकाइय (घटादि) पदार्थ से प्रदीप की तरह कोई भी विक्रिया को प्राप्त नहीं होना है। इस मर्यादा विषयक बोध से जिसकी बुद्धि बन्ध्या है वे ऋज्ञानी हैं। वे ही रागद्वेषादिक के पात्र होते हैं और स्वाभाविक जो उदासीनता है उसे त्याग देते हैं। आप बिज्ञा है कभी भी इस असत्य भाव को आलम्बन न देवेंगे। अनेकानेक मर चुके तथा मरते हैं ऋौर मरेंगे। इससे क्या आया। एक दिन हमारी भी पर्याय चली जावेगी। इसमें कौनसी आश्चर्य की घटना है इसका तो आपसे विज्ञ पुरुषों को विचार कोटि से प्रथक् रखना ही श्रेयस्कर है। जो यह वेदना असाता के उदय आदि कारण कूट होने पर उत्पन्न हुई और हमारे ज्ञान में आयी । क्या वस्तु है ? परमार्थ से विचारा जाय तो यह एक तरह से सुख गुए में विकृति हुई वह हमारे ध्यान में त्रायी। उसे हम नहीं चाहते । इसमें कोन सी विपरीतता हुई । विपरीतता तो जब होती है जब हम उसे निज

## ( ३१ )

मानलेते। विकारज परिएति को प्रथक् करना अप्रशस्त नहीं, अप्रशस्तता तो यदि हम उसी का निरंतर चिंतवन करते रहें और निजत्व को विस्मरण हो जावें तब है।

अतः जितनी भी श्रनिष्ठ सामग्री मिले, मिलने दो । उसके प्रति आदर भाव से व्यवहार कर ऋण मोचन पुरुष की तरह आनंद से साधु की तरह प्रस्थान करना चाहिये । निदान को छोड़कर आर्तभय षष्ठम् गुणस्थान तक होते हैं। दूसरे क्या वह गुणस्थान पलायमान हो गया। थोड़े समय तक ऋर्जित कर्म आया, फलदेकर चला गया। अच्छा हन्ना आकर हल्कापन कर गया। रोग का निकलना ही अच्छा है। मेरी सम्मति में चिकलना, रहने की अपेचा प्रशस्त है। इसी प्रकार आपकी असाता यदि शरीर की जीर्ण शीर्ष अवस्था कर निकल रही है तब आप को बहुत ही आनंद मानना चाहिये | अन्यथा यदि वह अभी न निकलती । तब क्या स्वर्ग में निकल्ती ? मेरी दृष्टि में केवल त्रसाता ही नहीं निकल रही साथ ही मोह की अरति त्रादि प्रकृतियां भी निकल रही हैं। क्योंकि आप इस असाता को सुख पूवक भोग रहे हैं। शांति पूर्वक कमों के रस को भोगना आगामी दुखकर न*हीं* ।

( ३२ )

बहुत कुछ लिखना चाहता हूं परंतु ज्ञान की न्युनता से छेखनी रुक जाती है। बन्धवर ? मैं एक बात की आपसे जिज्ञासा करता हं जितने लिखने वाले ऋौर कथन करने चाले तथा कथन कर बाहा चरणानुयोग के अनुकूल प्रवृत्ति करनेवाले तथा आर्ष वाक्यों पर अद्धाल, यावत व्यक्ति हुये हैं। अथवा हैं तथा होंगे। क्या सर्व ही मोच मार्गी हैं ? मेरी तो अद्धा नहीं। अन्यथा श्री कुन्दकुन्दस्वामी ने लिखा है। हे प्रभो ! "हमारे शच्च को भी द्रव्यलिंग न हो" इस वाक्य की चरितार्थता न होती तो काहे को लिखते । अतः पर की प्रवृति देख रंचमात्र भी विकल्प को आश्रय न होना ही हमारे लिये हितकर है। त्रापके ऊपर कुछ भी श्रापत्ति नहीं, जो आत्महित करने वाले हैं वह शिर पर आग लगाने पर तथा सर्वांग अग्निमय आभूषण धारण कराने पर तथा यंत्रादिद्वारा उपद्रित होने पर मोक्ष लक्ष्मी के पात्र होते हैं। मुर्भे तो इस आपकी असाता और श्रद्धा देखकर इतनी प्रसन्नता होती है । प्रभो ? यह अवसर सर्व को दे। आपकी केवल अद्धा ही नहीं। किन्तु आचरण भी अन्यथा नहीं ! क्या मुनि को जब तीव

१ घानी, कोल्हू

## ( ३३ )

व्याधि का उदय होता है। तब बाह्य चरणानुयोग त्राचरण के असद्भाव में क्या उनके षष्ठम गुणस्थान चला जाता है? यदि ऐसा है तब उसे समाधिमरण के समय हे मुने ? इत्यादि सम्बोधन करके जो उपदेश दिया है वह किस प्रकार संगत होगा। पीडा चादि में चित्ता चंचल रहता है इसका क्या यह आदाय है पीड़ा का बारंबार स्मरण हां जाता है। हो जात्रो स्मरण ज्ञान है और जिसकी धारणा होती है उसका बाह्य निमित्त मिलने पर स्मरण होना अनिवार्य है। किन्तु साथ में यह भाव तो रहता है। यह चंचलता सम्यक् नहीं परंतु मेरी समभ में इस पर भी गंभीर दृष्टि दीजिये । चंचल्ता तो कुछ बाधक नहीं । साथ में उसके अरति का उदय और असाता की उदीरणा से दुखानुभव हो जाता है। उसे पृथक् करने की भावना रहती है। इसी से इसे महर्षिओं ने आर्तध्यान की कोटि में गएनाकी है। क्या इस भाव के होने से पंचमगुणस्थान मिट जाता है। यदि इस ध्यान के होने पर देशवृत के विरुद्ध भाव का उदय श्रद्धा में न हो तब मुभे तो दृढ़तम विइवास है गुणस्थान की कोई भी चुति नहीं। तरतमता ही होती है वह भी उसी गुएस्थान में । ये विचारे जिन्होंने कुछ नहीं जाना कहां जावेंगे-कहीं जाओ हमें इसकी मीमांसा से क्या

( 38 )

## लाभ। हम बिचारे इस भाव से हम कहां जावेंगे इस पर ही विचार करना चाहिये।

आपका सचिदानंद जैसा आपकी निर्मल दृष्टि ने निर्णीत किया है द्रव्य दृष्टि से वैसा ही है। परंतु द्रव्य तो भोग्य नहीं, भोग्य तो पर्याय है अतः उसके तात्विक स्वरूप के जो साधक हैं उन्हें पृथक् करने की चेष्टा करना ही हमारा पुरुषार्थ है।

चोर की सजा देखकर साधु को भय होना मेरे ज्ञान में नहीं आता। अतः मिथ्यात्वादि किया संयुक्त प्राणियों का पतन देख हमें भय होने की कोई भी वात नहीं- हमको तो जब सम्यक रत्नत्रय की तलवार हाथ में आगई है और वह यद्यपि वर्तमान में मौथसी धारवाली है। परंतु है तो असि। कर्मेंधन को धीरे २ छेदेगी। परंतु छेदेगी ही बड़े आनंद से। जीवनोत्सर्ग करना, अंस मात्र भी आकुल्ता अद्धा में लाना प्रसु ने अच्छा ही देखा है। आकुल्ता अद्धा में लाना प्रसु ने अच्छा ही देखा है। आकुल्ता अद्धा में लाना प्रसु ने अच्छा ही देखा है। आकुल्ता अद्धा में लाना प्रसु ने अच्छा ही देखा है। आकुल्ता अद्धा में लाना प्रसु ने अच्छा ही देखा है। आकुल्ता अद्धा में लाना प्रसु ने अच्छा ही देखा है। आकुल्ता अद्धा में लाना प्रसु ने अच्छा ही देखा है। आकुल्ता अद्धा में लाना प्रसु ने अच्छा ही देखा है। आकुल्ता अद्धा में लाना प्रसु ने अच्छा ही रोखा है।

> जहां अपने परिणामों में आांति आई । आई । वहीं सर्व सामग्री है ।

( ३५ )

अतः हे भाई। आप सर्व उपद्रवों के हरण में समर्थ और कल्याण पथ के कारणों में प्रमुख जो आपकी दृढ़तम अढा है वह उपयोगिनी कर्म रात्रु वाहिनी को जयनशीला तीक्ष्ण असिधारा है।मैं तो आपके पत्र पढ़कर समाधिमरण की महिमा अपने ही द्वारा होती है।

निइचय कर चुका हूं। क्या आप इससे लाभ न उठावेंगे। अवइय ही उठावेंगे।

आ० शु० चि० वाबाजी का इच्छाकार <sub>आ० व०</sub> १ सं: ९४

नोट-मैं विवश होगया । अन्यथा अवश्य आपके समाधिमरण में सहकारी हो पुरुयलाभ करता । द्याप अच्छे स्थान पर ही आवेंगे । परन्तु पंचम काल है । श्रतः हमारे सम्बोधन के लिये त्रापका उपयोग ही इस ओर न जावेगा । त्र्यथवा जावेगा ही । तब कालकृत असमर्थता वाधक होकर आपको न द्यांति देगा । इससे कुछ उत्तरकाल की याचना नहीं करता ।



( ३६ )



श्रीयुत महाशय पं. दीपचंद जी वर्णी-योग्य इच्छाकार!

बन्धुवर ! आपका पत्र पढ़कर मेरी आत्मा में अपार हर्ष होता है कि आप इस रुग्णावस्था में दढ़श्रद्धाऌ हो गये हैं। यही संसार से उद्धार का प्रथम प्रयत्न है। कायकी क्षीएता कुछ आत्मतत्व की क्षीणता में निमित्ता नहीं। इसको आप समीचीनतया जानते हैं। वास्तव में आत्मा के शत्रु तो राग द्वेष और मोह हैं। जो उसे निरंतर इस दुःखमय संसार में अमए करा रहे हैं। अतः आवश्यकता इसकी है कि जो रागद्वेष के आधीन न होकर स्वात्मेत्थ परमानंद की ओर ही हमारा प्रयत्न सतत रहना ही श्रेयस्कर है।

औदयिक रागादि होवें इसका कुछ भी रंज नहीं करना चाहिये। रागादिकों का होना रुचिकर नहीं होना चाहिये। बड़े बड़े ज्ञानी जनों के राग होता है। परन्तु उस राग में रंज के अभाव से अग्रे उसकी परिपाटी रोधका आत्मा को अनायास अवसर मिल जाता है। इस प्रकार औदयिक रागादिकों की संतान का अपचय होते होते एक दिन समूखतल से

#### ( ३७)

उसका अभाव होजाता है और तब आत्मा अपने स्वच्छ स्वरूप होकर इन संसार की वासनावों का पात्र नहीं होता। मैं आपको क्या लिखूं। यही मेरी सम्मति है-जो अब विशेष विकल्पों को त्यागकर जिस उपाय से रागद्वेष का आद्याय में अभाव हो वही आपका व मेरा कर्त्तव्य है। क्योंकि पर्याय का अवसान है। यद्यपि पर्याय का अवसान तो होगा ही किन्तु फिर भी सम्बोधन के लिये कहा जाता है तथा मूढ़ों को वास्तविक पदार्थ का परिचय न होने से बड़ा आश्चर्य माऌम पड़ता है।

विचार से देखिये—तव आश्चर्य को स्थान नहीं। भौतिक पदार्थों की परिएति देखकर बहुत से जन-तुब्ध हो जाते हैं। भला जब पदार्थ मात्र अनन्त राक्तियों का पुंज है। नब क्या पुद्रल में वह बात न हो, यह कहां का न्याय है। आजकल विज्ञान के प्रभाव को देख लोगों की अद्धा पुद्रल द्रव्य में ही जायत हो गई है। भला यह तो बिचारिये। उसका उपयोग किसने किया। जिसने किया उसको न मानना— यही तो जड़भाव है।

विना रागादिक के कार्माण वर्गणा क्या कर्मादि रूप परिणमन को समर्थ हो सकती है ? तब

## ( ३८ )

यों कहिये। अपनी अनन्तशक्ति के विकाश का बाधक आपही मोहकर्म द्वार। करा रहा है फिर भी हम ऐसे अन्धे हैं जो मोह की महिमा आलाप रहे हैं। मोह में बलवत्ता देनेवाली शक्तिमान वस्तु की ओर दृष्टि प्रसार कर देखो तो धन्य उस अचिन्त्य प्रभाव वाले पदार्थ को कि जिसकी वक्र दृष्टि से यह जगत अनादि से बन रहा है। और जहां उसने वक्र दृष्टि को संकोच कर एक समय मात्र सुदृष्टि का अवलम्बन किया। कि इस संसार का अस्तित्व ही नहीं रहता। सो ही समयसार में कहा है--

## कलशा-

कषाय कलिरेकतः शान्तिरस्त्येकतो । भवोपहतिरेकतः स्पृशाति मुक्तिरप्येकतः ॥ जगत्त्रितयमेकतः स्फुरति चिच्चकास्त्येकतः । स्वभाव महितात्मनो विजयतेऽद्मुतादद्मुतः ॥

अर्थ। एक तरफ से कषाय कालिमा स्पर्श करती है और एक तरफ से शान्ति स्दर्श करती है। एक तरफ संसार का अघात है त्रोर एक तरफ मुक्ति है। एक तरफ तीनों लोक प्रकाशमान है और एक तरफ चेतनत्रात्मा प्रकाश कर रहा है। यह बड़े

#### ( ३९ )

<del>ब्रा</del>श्चर्य की बात है कि आत्मा की रवभाव महिमा विजय प्राप्त होती है । इत्यादि अनेक पद्ममय भावों से यही अन्तिम करन प्रतिमा का विषय होता है जो आत्म द्रव्य ही की विचित्र महिमा है। चाहे नाना दुःखाकीर्णं जगत में नाना वेष धारण कर नटरूप बहुरुपिया बने। चाहे स्वनिर्मित सम्पूर्ण लोला को सम्बरण करके गगन वत् पारमाधिक निर्मल स्वभाव को भारण कर निरचल तिष्ठे। यही कारण है। "सर्वं वै ग्वाल्विदं ब्रह्म" अर्थ-यह संपूर्ण जगत् ब्रह्म स्वरूप है । इसमें कोई सन्देह नहीं, यदि वेदान्ती एकान्त दुराग्रह को छोड़ देवें । तब जो कुछ कथन है अत्तरशः सत्य भासमान होने लगे। एकान्तदृष्टि ही अन्धदृष्टि है । आप भो अल्पपरिश्रम से कुछ इस त्रोर आईये । भला यह जो पंच स्थावर और त्रस का समुदाय जगत दृश्य हो रहा। क्या है ? क्या ब्रह्म का विकार नहीं ? अथवा स्वमत की ओर कुछ दृष्टि का प्रसार कीजिये। तब निमित्त कारण की मुख्यता से ये जो रागादिक परिणाम हो रहे हैं। उन्हें पौदुलिक नहीं कहा निरूपण किया है वहां च्चयोपशम भाव को भी अवधिज्ञान का विषय कहा है। अर्थात् रूपी पुदुल द्रव्य सम्बन्धेन जायमानत्वात् चायोपशिक भाव भी

( 80 )

कथंचित रूपी है केवलभाव अवधिज्ञान का विषय नहीं क्योंकि उसमें रूपी द्रव्य का सम्बन्ध नहीं। अतएव यह सिद्ध हुआ औदयिक भाववत् क्षायो-पशमिक भाव भी कथंचित् पुद्धल सम्बन्धेन जायमान होने से मूर्तिमत् है न कि रूप रसादि मत्ता इनमें है। तद्वत् अशुद्धता के सम्बन्ध से जायमान होने से यह भौतिक जात भी कथंचित् ब्रह्म का विकार है। कथंचित् का यह अर्थ है--

जीव के रागादिक भावों के ही निमित्त को पाकर पुदुल द्रव्य एकेन्द्रियादि रूप परिणमन को प्राप्त है। अतः यह जो मनुष्यादि पर्याय हैं। असमान जातीय द्रव्य के संबंध से निष्पन्न हैं। न केवल जीव की है और न केवल पुद्रल की है। किन्तु जीव त्रौर पुदुल के संबंध से जायमान हैं। तथा यह जो रागादि परिणाम हैं सो न तो केवल जीव के ही हैं और न केवल पुद्दल के हैं किन्तू उपादान की ऋपेचा तो जीव के हैं और निमित्त कारण की ऋपेचा पुदुल के हैं। और द्रव्य दृष्टि कर देखें तो न पुद्धल के है और न जीव के हैं । शुद्ध द्रव्य के कथन में पर्याय की मुख्यता नहीं रहती। अतः यह गौण हो जाते हैं। जैसे पुत्र पर्याय स्त्री पुरुष दोनों के द्वारा सम्पन्न होती है। अस्तु इससे यह निष्कर्ष निकला यह जो पर्याय है।

For Private and Personal Use Only

## ( 88 )

वह केवल जीव की नहीं किन्तु पौड़ल मोह के उदय से आत्मा के चारित्र गुए में विकार होता है । अतः हमें यह न समफना चाहिये कि हमारी इस में क्या चति है ? चति तो यह हुई जो छात्मा की वास्तबिक परिएति थी वह विकलता को प्राप्त हो गई। वही तो चति है। परमार्थ से चति का यह आशय है कि ज्रात्मा में रागादिक दोष हो जाते हैं वह न होवें । तब जो उन दोषों के निमित्त से यह जीव किसी पदार्थ में अनुकूलता त्रीर किसी में प्रतिकूलता की कल्पना करता था और उनके पहिएमन द्वारा हर्ष विषाद कर वास्तविक निराकुलता (सुख) के अभाव में आकुत्ति रहता था । शान्ति के त्रास्वाद की कणिका असद्भाव में आत्मगुण चारित्र की स्थिति अकम्प त्रीर निर्मल हो जाती है। उसके निर्मल निमित्त को त्रवलम्बन कर आत्मा का चेतना नामक गुए है वह स्वयमेव दृश्य और ज्ञेय पदार्थों का तद्रूप हो दृष्टा और ज्ञाता शक्तिशाली होकर आगामी अनन्त काल स्वाभाविक परिणमनशाली त्राकाशादिवत् क्रकंप रहता है | इसी का नाम भाव मुक्ति है | अब आत्मा में मोह निमित्तक जो कऌषता थी वह

( 8२ )

सर्वथा निर्मूल हो गई किन्तु अभी जो योग निमित्तक परिस्पन्दन है वह पर्देश प्रकम्पन को करता ही रहता है। तथा तन्निमित्तक ईर्यापथास्रव भी साता वेदनीय का हुआ करता है। यद्यपि इसमें आत्मा के स्व:भा-विक भाव की चति नहीं । फिर भी निरपवर्त्य त्रायु के सद्भाव में यावत् त्रायु के निषेक हैं तावत् भव स्थिति को मेंटने को कोई भी चम नहीं। तब अन्तमुहर्त आंयु का अवसान रहता है। तथा शेष जो नामादिक कर्म की स्थिति अधिक रहती है, उस काल में तृतीय गुक्रध्यान के प्रसाद से दंडकपाटादि द्वारा शेष कर्मों की स्थिति को श्रायु समकर चतुर्दश गुणस्थान का आरोहण कर अयोग नाम को पाप्त करता हुआ लघु पंचाक्षर के उचारण के काल सम गुणस्थान का काल पूर्ण कर चतुर्थध्यान के प्रसाद से दोष प्रकृतियों को नाश कर परमयथोख्यात चारित्र का लाभ करता हत्रा १ समय में द्रव्य मुक्ति व्यपदेशता को लाभकर मुक्ति साम्राज्य लक्ष्मी का भोक्ता होता हुआ लोक शिखर में विराजमान होकर तीर्थंकर प्रभु के समव शरण का विषय होकर हमारे कल्याण में सहायक हो । यही हम सबकी अन्तिम प्रार्थना है ।

www.kobatirth.org

श्रीमान् बाबा भागीरथजी महाराज त्रागये उनका सस्नेह आपको इच्छाकार। खेद इस बात का विभाव जन्य हो जाता है। जो आपकी उपस्थिति यहां न हुई। जो हमें भी आपका वैयावृत्तिकरने का अवसर मिल जाता परन्तु हमारा ऐसा भाग्य कहां ! जो सल्लेखना धारी एक सम्यग्ज्ञानी पंचमगुणस्थानवर्ती जीव की प्राप्ति हो सके। आपके स्वास्थ्य में आभ्यंतर तो चति है नहीं, जो है सो बाह्य है । उसे त्राप प्रायः वेदन नहीं करते यही सराहनीय है। धन्य है आपको- जो इस रुग्णावस्था में भी सावधान हैं। होना ही श्रेयस्कर है। शरीर की अवस्था अपस्मार वेगवत् वर्धमान हीयमान होने से अधुव और शीतदाह ज्वरावेश द्वारा अनित्य है । ज्ञानी जन को ऐसा जानना ही मोच्तमार्ग का साधक है। कब ऐसा समय श्रावेगा जो इसमें वेदना का अवसर ही न चावे।

आशा है एक दिन त्रावेगा । जब त्राप निश्चल वृत्ति के पात्र होवेंगे । त्रब अन्य कार्यों से गोेए भाव धारए कर सल्लेखना के ऊपर ही दृष्टि दीजिये त्रोर यदि कुछ लिखने की चुलबुली उठे तब उसी पर

#### ( 88 )

लिखने की मनोवृत्ति की चेष्टा कीजिये। मैं त्रापकी प्रशंसा नहीं करता, किन्तु इस समय ऐसा भाव जैसा कि स्रापका है प्रशस्त है।

ज्येष्ठ वदी १ से फा० सु. ५ तक मौन का नियम कर लिया है एक दिन में १ घन्टा शास्त्र में बोलूंगा ।

पत्र मिल गया- पत्र न देने का अपराध चुमा करना

## गणेशप्रसाद वर्णी ।



For Private and Personal Use Only

84)



श्रीयत महाज्ञाय दीपचंद जी वर्णी साहब-योग्य इच्छाकार । पत्र से आपके शारीरिक समाचार जाने− अव यह जो शरीर पर है शायद इससे अल्प ही काल में आपकी पवित्र भावनापूर्ण च्रात्मा का सम्बन्ध छटकर वैकियक शरीर से संबंध हो जावे। मुभे यह दृ अद्धान है कि आपकी असावधानी शरीर में होगी−न कि आत्मचिंतवन में । त्रसातोदय में यद्यपि मोह के सद्भाव से विकलता की सम्भावना है। तथापि च्रांशिक भी प्रवत्त मोह के अभाव में वह <del>त्रात्मचिंतन का बाधक नहीं हो सकती। मेरी तो</del> दृढ़ अद्धा है कि आप अवश्य इसी पथ पर होंगे। और अन्त तक इढ़तम परिणामों द्वारा इन चुद्र बाधाओं की त्रोर ध्यान भी न देंगे। यही अवसर संसार लतिका के घात का है।

देखिये जिस असातादि कर्मों की उदीरणा के अर्थ महर्षि लोग उग्रोग्रतप धारण करते २ शरीर को इतना कृश बना देते हैं। जो पूर्व लावण्य का अनुमान भी नहीं होता। परन्तु आत्म दिव्य शक्ति से भूषित ही रहते हैं। आपका धन्य भाग्य है। जो बिन ही निर्ग्रंथपद धारण के कमों का ऐसा लाघव हो रहा जो स्वयमेव उदय में आकर प्रथक् हो रहे हैं। इस जितना हर्षमुभे है। नहीं कह सकता, वचनातीत ह

आपके ऊपर से भार उठ रहा है फिर आपके सुखकी अनुभूति तो आपही जाने। शांति का मूल कारण न साता है और न असाता, किन्तु साम्यभाव है। जो कि इस समय आपके हो रहे हैं। अब केवल ब्रह्मानुभव ही रसायन परमौषधि है। कोई कोई तो कम कम से अन्नादि का त्याग कर समाधिमरण का यत करते हैं। आपके पुण्योदय से स्वयमेव वह छूट गया। वही न छूटा साथ साथ असातोदय द्वारा दुखजनक सामग्री का भी अभाव हो रहा है।

अतः हे भाई ! आप रंचमात्र क्लेश न करना, जो वस्तु पूर्व अर्जित है यदि वह रस देकर स्वयमेव आत्मा को लघु बना देती है। इससे विशेष और आनन्द का क्या अवसर होगा। मुभे अंतरंग से इस बात का पश्चात्ताप हो जाता है, जो अपने अंतरंग

बन्धु की ऐसी अबस्था में वैयावृत्त्य न कर सका। माघ व० १४ सं: ९४ गोएराप्रसाद वर्णी ॥ इति ॥

## ( 89 )

# \* उपसंहार \*

जुकुबुन्द,

श्चापको इन ज्ञानसुधामय पत्रों को पढ़ने से जो वचनातीत आनंद प्राप्त हुब्रा है। उससे च्रवइय च्रात्मलाभ लेना। यही ज्ञान समाधि की भावना जीवको परम हितकारिणी है।

सल्लेखना धर्म गृहस्थ त्रोर मुनि दोनों का है। तथा सन्नेखना व समाधिमरण का ऋर्थ भी एक है। इसलिये जब शरीर किसी असाध्य रोग से अथवा वृद्धावस्था से असमर्थ हो जावे, देव मनुष्यादि कृत कोई दुर्निवार उपसर्ग उपस्थित हुवा होवे या महा दुर्भित्त् से धान्यादि भोज्य पदार्थ दुष्प्राप्य होगये होवें अथवा धर्म के विनाइा करने वाले कोई विरोष कारण आ मिले होवें तब अपने शरीर को पके हुवे पान के समान तथा तैल रहित दीपक के समान स्वयमेव विनाश के सन्मुख जान सन्यास मरण करे। यदि मरण में किसी प्रकार का संदेह हो तो मर्यादा पूर्वक ऐसी प्रतिज्ञा करे कि "जो इस उपसर्ग से मेरी .मृत्यु हो जावेगी तो मेरे आहारादिक का सर्वथा इराग है और कदाचित् जीवन अवदोष रहेगा तो ( 8८ )

त्राहारादिक का ग्रहण करूंगा ।" क्योंकि **"शरीरमा**धं खत् धर्मसाधनं" इस वाक्य के अनुसार शरीर की रच्चा करना परम कर्तव्य है । धर्म का साधन शरीर से ही होता है। इसलिये रोगादिक होने पर यथाशक्ति प्रासक औषधि सेवन करना चाहिये परन्तु जब असाध्य रोग हो जावे और किसी प्रकार के उपचार से लाभ न होवे तब यह शरीर दुष्ट संग के समान सर्वथा त्याग करते हुये इच्छित फलका देनेवाला धर्म विशेषता से पालने योग्य कहा है । शरीर मृत्यु के पश्चात् फिर भी प्राप्त होता है परन्तु धर्म धारण करने की योग्यता पाना अत्यंत दुर्लभ है। इस प्रकार विधिवत देहोत्सर्ग में दुःखी न होकर संयमपूर्वक मन, वचन त्रोर काय के व्यापार ज्रात्मा में एकत्रित करता हआ त्रौर "जन्म जरा त्रौर मृत्यु जरौर संबंधी है मेरे नहीं है" ऐसा चिंतवन कर, निर्ममत्व होकर विधिपूर्वक आहार घटा, इारीर कशकर तथा शास्त्रामृत के पान से कषायों को कुदा करते हुये चार प्रकार के संघ को साक्षी करके समाधिमरण में उद्यमवान होकर अंतरंग ज्ञान ज्योति जागृत कर बहिरंग किया करना चाहिये।

स्नेह, वैर, सङ्ग (परिग्रह) आदि को छोड़कर द्युद्धमन होकर अपने स्वजन परिजनों को क्षमा करता हुआ उनसे अपने दोषों की क्षमा करावे । कृत कारित ( 89 )

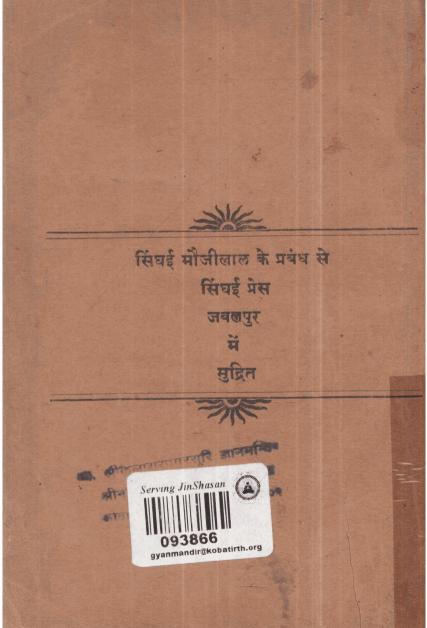
अनुमोदना द्वारा अपने पूर्व में किये हुये पापों की आलोचना करते हुये मरण पर्यंत महाव्रत या अणुव्रत प्रीतिपूर्वक धारणकर शोक, भय, खेद, ग्लानि, कलुषता, घरति चादि भावों को त्याग कर साहस, शक्ति, उत्साह, धैर्य को प्रकट करते हुये भोजन का त्याग कम कम से करे। पश्चात् आहार का भी त्यागकर, दुग्धपान पुनः तक्रपान व उष्ण जलपान पश्चात् इसका भी त्याग कर उपवास धारण करता हुत्रा पंच परमेष्ठी का ध्यान व आत्मध्यान करते हुये णमोकार मंत्र का उचारण पूर्वक शरीर का सावधानी से त्याग करे।

अंतसमय जीवने की इच्छा, मरण की वांछा, मित्रों से त्रनुराग, पूर्व भोगों का स्मरण और आगामी भोगों की वांछा आदि दोषों को न लगावे।

मेरी अंतिम मनोकामना है कि इस सुखप्रद सहुेखना का लाभ सर्व जीव उठावें।

अ समाप्त अ

सर्व जीवों प्रति-धर्म मैत्री का इच्छुक-सिं. कस्तूरचंद नायक



For Private and Personal Use Only